मैं ठीक हूँ पापा

हिन्दी A D D A



ज़ेब अख्तर

मैं ठीक हूँ पापा

मेरा सूटकेस अभी तक बरामदे में ही रखा हुआ था। मैं रसोई के सामने ही कुर्सी डालकर बैठ गया। सविता को चाय बनाते देखकर बोला, 'रहने दो, मैं बाहर... बाजार से कुछ ले आता हूँ... तुम्हें देर होगी।' 'नहीं, ब्रेड-मक्खन घर में है और चाय मैं बना ही दे रही हूँ।' उसने वहीं से कहा और पूछा - 'और माँ का टाउन्सिल कैसा है अब?'

'ठीक है, तुम अपनी सुनाओ... कॉलेज कैसा चल रहा है?'

'मैं तो ठीक हूँ... और कॉलेज भी अच्छा ही चल रहा है। दो प्रोफेसर और आ गए हैं... छात्र भी बढ़ते जा रहे हैं।' उसने चाय देते हुए कहा - 'अच्छा अब मैं चलती हूँ। दोपहर तक आऊँगी... तब तक आप आलमारी से किताबें निकाल कर देखिए, आपकी पसंद की हैं... और हाँ, बाथरूम का नल खराब है... पानी यहाँ बरामदे की टंकी से ही ले जाना पड़ता है।'

वह अपनी नोट बुक सँभालती हुई जल्दी-जल्दी बाहर निकल गई। अकेला ही नाश्ता लेता हूँ और फिर सविता के कमरे में आ जाता हूँ। इस कमरे से लगा किचन, किचन से लगी छोटी-सी बैठक और सामने बरामदा, फिर थोड़ा-सा आँगन, यहीं फूलों से लदे कुछ गमले भी हैं। कुछ पौधे जमीन पर भी उग आए हैं।

मैं वापिस कमरे में, इधर-उधर नजर दौड़ाता हूँ, घर के एक-एक बदलाव को नोट करता हूँ। पिछली बार आया था तो यह टेबल-लैंप, दीवार पर लगे बर्फीले पहाड़ों के चित्र, दोनों नए थे। किताबों की आलमारी, कृष्ण भगवान की मूर्ति और फोल्डिंग चारपाई, सभी पहले-से हैं। मैं मेज के पास बैठ गया और टेबल-लैंप पर जम आई धूल की परत को साफ करने लगा। तभी मेरी नजर किताबों के रैक पर रखी गीता पर पड़ी। तो लायब्रेरी में एक किताब और बढ़ गई है! मैं मन ही मन मुस्कुराया। मैं गीता को हाथ में लेकर सोचने लगा कि सविता के पास इसके होने की क्या वजह हो सकती है! सिर्फ अध्ययन... या अध्यातम वगैरह कुछ! जहाँ तक मेरा ख्याल है, इसका संबंध अध्ययन से अधिक होना चाहिए क्योंकि धर्म के मामले में सविता हमेशा से लापरवाह रही है। और तो और, वह पूजा के लिए आए हुए प्रसाद को भी जूठा कर देती थी, फिर पूजा हो जाने के बाद चुपके से मुझे बता देती थी। उसकी ये शरारतें बड़ी होने तक नहीं गईं। चिंतन तो इस लड़की के स्वभाव से पल भर के लिए भी मेल नहीं खाता।

सविता को यहाँ आए... एक वर्ष होने जा रहा है। यह ख्याल आते ही एक प्रश्न का उत्तर मैं अपने आप से माँगने लगता हूँ, इस एक वर्ष में क्या सविता के निर्णय को प्रभावित नहीं किया होगा? उसका निर्णय और कठोर हो गया होगा या कहीं कुछ पिघल भी रहा होगा? शायद हाँ, शायद नहीं। मैं झूलने लगता हूँ इन्हीं दो पाटों के बीच। हालाँकि सविता के बारे में मेरे अधिकांश अनुमान सही निकलते हैं। मुझे इसका गर्व-सा रहा है। पर यहाँ लगता है, मैं चूक गया हूँ।

सविता मेरी पहली संतान है। कई देवी-देवता, मंदिर-मस्जिद और तीर्थ-स्थलों की खाक छानने के बाद वह पैदा हुई थी। वह भी तब जब हमलोग पूरी तरह निराश हो चुके थे। लेकिन सविता के बाद भगवान ने महेश को भी हमारे पास भेज दिया, उसका छोटा भाई बनाकर। इस तरह वह आई भी तो हमारे खानदान के वारिस को लेकर। शोभा तो सविता का उपकार मानती है। क्योंकि बेटी तो पराई ही होती है हालाँकि इन बातों में उसका कोई योगदान भी नहीं था। फिर भी उसे क्रेडिट दिया जाता रहा। नतीजा हुआ कि वह बचपन से ही शोख और शरारती होती गई। छह-सात साल की उम्र से ही अपनी पसंद-नापसंद का इजहार करने लगी थी। यह नहीं वह पढ़ना है, यह नहीं वह पहनना है, यहाँ तक कि मुझे इसी स्कूल में पढ़ना है। और मैं देखता आया हूँ... उसके चुनाव, उसकी पसंद, कभी स्तरहीन नहीं रहे। कॉलेज की पढ़ाई सविता ने हास्टल में रहकर की। वहाँ से, मुझे याद है, वह धीरे-धीरे आस्थाहीन होती गई। मैंने कई बार उसे समझाना चाहा, लेकिन हर बार एक बहस छिड़ जाती। अनमने ढंग से ही सही, वह मेरी बातों को मान भी लेती थी। मगर शायद यह मैं भी जानता था कि, उसमें सहमति का अंश जरा भी नहीं होता था।

शोभा को यह सब बिल्कुल पसंद नहीं था। कारण वही था कि मैं सविता को लड़की नहीं लड़का समझता था। और यह कि यह पागलपन मुझसे अधिक सविता को नुकसान पहुँचाएगा। इस संशय ने उसे इस कदर आक्रांत कर दिया कि सविता के विवाह के लिए वह समय के काफी पहले से सोचने लगी। यही नहीं, अपनी पसंद का लड़का ढूँढ़ा और जितनी जल्दी हो सका, अपनी निगरानी में विवाह भी कराया।

योगेश अच्छा था। आयकर विभाग में अधिकारी। सुंदर। हमारी बराबरी का। मैंने सविता को अपनी राय हाँ में दी तो उसने भी हाँ कर दिया। विवेक के बारे में मुझे अब मालूम हुआ है, सविता के यहाँ आ जाने के बाद। उसे एक रोज मैंने यहाँ से जाते हुए देखा था। एक झलक भर मैं देख सका था उसकी। उसने शायद मुझे पहचान लिया था। इसलिए मेरी ओर पीठ किए, लंबे-लंबे डग भरता, जल्दी ही ओझल हो गया था। तो यह विवेक था। कम लंबा और कम गोरा। अभी तक कुछ नहीं कर पाया लेकिन जल्दी कुछ कर लेगा। भौतिकी में गोल्ड मेडलिस्ट रहा है। सविता ने उस रोज मुझे यही सब बताया था।

और उसी दिन मैंने अपने आत्म-विश्वास को टूटते हुए देखा था। सविता और योगेश। सविता और विवेक। इस अंतर को मैं क्यों नहीं पहचान पाया! उस दिन सविता जब योगेश के पास से लौट आई थी, अकेली, तब उसने बिना किसी अफसोस के कहा था,

'इसमें परेशान होने की कोई बात नहीं है पापा। अब देखों, मेरी और तुम्हारी सोच कितनी मिलती-जुलती है। हम दोनों की सोच में कितना कुछ कामन है... देयर इज निथंग अनकामन बिटविन पापा एंड सविता!'

मैं उसकी आवाज सुन रहा था, शब्द नहीं, 'योगेश हमारी और आपकी सोच के विपरीत निकला। चलिए, यह हमारी नीरसता ही दूर करेगा... कहीं कुछ लीक से अलग भी होना चाहिए।' मैं सचमुच ठगा गया था। सविता के आँसू भी नहीं देख पाया था उस घड़ी। विवेक से सविता का मिलना-जुलना पहले से था। पता नहीं दोनों में एक जैसा क्या था। सविता ने ही मुझे बताया था कि उन दोनों के विचार एक जैसे कभी नहीं रहे। अक्सर किसी न किसी प्रश्न को लेकर दोनों में बहस हो जाती। जिसका अंत तो होता ही नहीं था। फिर भी, दोनों का साथ बहुत अधिक समय से था। मैं जानता हूँ, विवेक की निकटता एक मित्र की निकटता ही रही होगी। अगर कहीं कुछ और होता तो वह मुझसे जरूर कहती। कम से कम विवाह के समय ही।

विवेक के बारे में मैं कुछ नहीं कह सकता। क्योंकि मैं आज तक उससे मिला भी नहीं था। लेकिन पिछली बार उसे यहाँ से जाते हुए देखकर मुझे खौफ-सा हो गया था। सोचा था, सविता से बात करूँगा। फिर हिम्मत नहीं हुई थी। इस बार जरूर पूछूँगा। मन ही मन अपने इस निर्णय को मजबूत करने लगता हूँ। 'क्या सोच रहे हैं पापा...?' मैं चौंक पड़ता हूँ। बिल्कुल अपने सामने खड़ी सविता को देखता हूँ। क्या सोच रहे हैं पापा - इस वाक्य में जो टोन और लय है, वह काफी पुराना है। हमारी ज्यादातर बहसें इन्हीं गिने-चुने लफ्जों से शुरू होती हैं। मैं लौटता हूँ, वर्तमान में, 'सोच रहा था... तुम्हें अपने हाथों से बनी चाय पिलाऊँ... काफी थकी आ रही होगी तुम!'

'हाँ... लेकिन इतनी भी नहीं कि पापा से चाय बनावाऊँ!' यह कहते हुए वह सीधे किचन में चली गई। बिना हाथ-मुँह धोए। बरामदे में ही बैठकर हम चाय पीने लगे। मैं सोचने लगा कि विवेक के बारे में बात कहाँ से शुरू करूँ! सविता को भी अनुमान हो चला था कि मैं आज किस बारे में बात करने वाला हूँ। इसलिए स्वयं को इतनी देर से तैयार करने में लगा हुआ हूँ। फिर मैं अचानक विषय बदल देता हूँ, 'योगेश मुझसे मिला था...'

'फिर!'

'वह यहाँ भी आया था... पिछले सप्ताह!'

एक चुभती आवाज आई - तो... तो शायद आप इसी सिलसिले में यहाँ आए हैं!'

'ओह... तुम तो बस बाल की खाल उधेड़ने में लग जाती हो। वह माफी...'

'पापा, वह मुझसे भी वही सब कुछ कह रहा था।'

तो फिर तुमने इस बारे में क्या सोचा है... माँ आधी हुई जा रही है, तुम्हारे बारे में सोच-सोच कर!'

'पापा, उस आदमी की कोई गारंटी नहीं...!'

'फिर भी अपनी गलतियों को मान तो रहा है वह... उसे एडजस्ट करना अब तुम्हारे हाथ में है।'

'पापा, जहाँ तक मेरा सवाल है... मैंने उसे काफी दूर तक एडजस्ट किया है, बल्कि बर्दाश्त किया है। यह आप भी जानते हैं। और अब मैं इन बातों को बहुत पीछे छोड़ आई हूँ। मेरे सामने अब मेरे उद्देश्य हैं... मेरा लक्ष्य है, जिनको भुलाने की कोशिश करनी पड़ी थी।'

मैं खामोश हो जाता हूँ। कैरियर को लेकर वह शुरू से जागरूक थी। लेकिन विवाह के बाद जैसे उसने भारतीय नारी की लीक को पहचान लिया था। योगेश के साथ वह तीन वर्ष रही। इन तीन वर्षों में उसने योगेश के अलावा कुछ नहीं सोचा। फिर जब उसकी सीमाएँ टूटने लगीं तो सविता भी निराश होती गई। अंततः एक दिन हार भी गई। लौटने के बाद भी उसने अपनी हार को स्वीकार नहीं किया था। उसके अनुसार, उसने इस लड़ाई में कभी हिस्सा ही नहीं लिया था। लेकिन मैं जानता हूँ, इन बातों में खोखलापन है। मैं फिर भी चुप रहता हूँ। क्योंकि मुझे पता है, मेरी बेटी ने बहुत कड़वे विष का पान किया है। इस विष को मुझे भी महसूस करना चाहिए। उसके दुखों का एक बड़ा कारण मैं भी हूँ।

सविता की आवाज सुनाई पड़ती है, 'महेश और अर्चना कैसे हैं...?' इस बेकार सवाल के साथ औपचारिकता की दीवार बेवजह हम दोनों के बीच खड़ी हो जाती है। मैं उकताकर 'सब ठीक है' बोलता हूँ। अर्चना का चेहरा भी सामने आ जाता है। मन और कड़वा हो उठता है। मेरे और शोभा के खिलाफ महेश ने प्रेम विवाह किया है। प्रेम विवाह, मतलब अपनी पसंद का जीवन-साथी। इस विवाह का शोभा को पहले बहुत अफसोस था। लेकिन अब, जब वह सविता को देखती है तो उसे बहुत अफसोस नहीं होता। पता नहीं सविता, महेश और अर्चना के समानांतर खुद को और योगेश को रख पाती है या नहीं। मैं अब सचमुच असफल होने लगा हूँ। फेल होने लगा हूँ। प्रश्नों के इस लंबे गिलयारे में अक्सर लड़खड़ा जाता हूँ। सविता के यहाँ रहने की एक वजह अर्चना भी है। विवाह के बाद महेश भी एक दायरे में बंध गया था। दायरा, जिसकी रेखाएँ अर्चना ने खींची थीं। यहाँ नया कॉलेज खुला। और वह बहुत कम वेतन पर यहाँ पढ़ाने आ गई। आराम से थीसिस लिखने का बहाना भी था। हाँ, पी-एच.डी. जो कर रही है। मुझे विवेक का ख्याल आया।

'विवेक आया था फिर यहाँ?'

'कभी-कभी आ जाता है। लेकिन मैं मना करती रहती हूँ।'

मैं फिर खामोश हो जाता हूँ। शाम के हलके लाल रंग में नहाए आसमान को देखने लगता हूँ। सविता मेरी खामोशी भाँप लेती है,

'पापा, यकीन मानो... मैंने विवेक के लिए कभी नहीं सोचा... वह वैसे भी अपने कैरियर को लेकर परेशान है।'

'फिर भी त्म सोच तो सकती हो!'

'शायद नहीं... उसके लिए शायद कभी न सोच सकूँ, क्योंकि...'

'क्योंकि क्या?' मेरी आवाज अचानक बदल जाती है - 'अर्चना ठीक ही कहती है... तुम्हारा गर्व तुम्हें ले डूबेगा। अरे भई, इतने दिनों से एक-दूसरे को जानते हो, एक-दूसरे को समझते हो फिर भी। मैं मानता हूँ तुम अकेली रह सकती हो, बड़ी-बड़ी सफलताएँ हासिल कर सकती हो, फिर भी एक सहारे की जरूरत तो पड़ती ही है।'

'पापा...!'

वह पापा शब्द को खींच कर कहती है, जैसे किसी चीज के लिए जिद कर रही हो।

'मैं विवेक के बारे में साफ-साफ जानना चाहता हूँ।' कहने के लिए मैं कह गया, पर लगा विवेक सविता के लिए कम और मेरे लिए अधिक जरूरी हो गया है। मैं ठीक से बैठने का बहाना करने लगा। और सविता के उत्तर की प्रतीक्षा भी। उसकी आँखें मेरे ही चेहरे पर टिकी हुई थीं। वह जब भी कुछ जरूरी कहने को होती है, इसी तरह देखती है, 'पिताजी... एक बात, मैं विवाह के बाद बड़े साफ तौर पर महसूस कर रही हूँ, कई बार आपसे कहने के लिए सोचा मगर डर लगता था कि कहीं आपसे मिली स्वतंत्रता का अपमान न हो जाए। पापा, योगेश ने मुझे क्या समझा... अपनी दौलत... सिर्फ एक औरत... इस्तेमाल के लिए मुफ्त में मिली हुई कोई चीज! और उसने इसका इस्तेमाल शुरू कर दिया। उसके साथ तीन सालों तक रही। फिर भी मेरे पास उसके बारे में बोलने के लिए कुछ नहीं है। और अगर बोलना चाहूँ तो मुझे आत्महत्या करनी पड़ेगी...

'फिर है विवेक। योगेश के विपरीत बिल्कुल शांत... जल्दी जोर से नहीं बोलता। उससे मुझे कभी प्रेम नहीं हुआ जो मैं उससे कर पाती। हाँ, वह यहाँ आता रहता है, मुझे चाहता भी है... पर इस चाहने में एक सहानुभूति, एक उपकार का जज्बा अधिक है और प्रेम का कम। मैंने कई बार ध्यान दिया है, वह मेरी मदद करने के लिए आतुर दिखाई पड़ता है।

'और पापा, आखिर में आप हैं... इस दोराहे पर आप और मैं खड़े हैं। हम दोनों ही कभी योगेश को देखते हैं और कभी विवेक को। इन दोनों में से जब कोई दिखाई नहीं देता तो आप मुझे देखने लगते हैं। उस पापा की नजर से नहीं जिसे मैं अपना सबसे अच्छा दोस्त समझती हूँ, बल्कि आप भी मुझे उसी हमदर्दी और उपकार की नजर से देखने लगते हैं, जिस नजर से कभी योगेश ने मुझे देखा। और जिस नजर से विवेक अब देखना चाहता है। तो आप तीनों की नजर में पहले मैं एक कमजोर और हल्की... फिर बाद में पत्नी, प्रेमिका या बेटी...!'

मैं सिवता के चुप होने के बाद खामोश बैठा रहता हूँ। न जाने मैं किसके लिए सोच रहा हूँ। सिवता की बातें सुनकर यह सवाल और उलझ जाता है। देर तक, कुछ साफ नहीं हो पाता। न जाने कब वह मेरे पास से उठकर चली जाती है। कोई आहट सुनाई नहीं देती। न सिवता के कदमों की, न खाने की मेज पर, न अनिगनत तारों के विदा होने पर... सब कुछ बिना किसी आवाज और ध्विन के होता चला जा रहा है। और खामोशी के इन्हीं तारों पर सवार होकर सिवता तक मेरी बात पहुँच गई है। वह शायद इसीलिए शांत दिखाई दे रही है।

बस स्टाप पर वह मुझे छोड़ने आती है। मुझे छोड़कर वह इधर से ही कॉलेज चली जाएगी। वह मेरे पास बैठ जाती है और मेरे दाएँ हाथ को सहलाने लगती है। बस के चलने का संकेत सुनकर वह मेरा हाथ थामे-थामे खड़ी हो जाती है। मैं उसे देखता हूँ... सविता को। अपनी बेटी को। कितनी बड़ी हो गई है। मुझे गर्व जैसा हो आता है। चाहकर भी इसे रोक नहीं पाता हूँ। और कहाँ रोक पाता हूँ आँखों से छलक पड़ती दो बूँदों को। सविता उन्हें भी थाम लेती है। और जिस सहजता से कल बोली थी, उसी सहजता से आज भी कहती है, 'मैं ठीक हूँ पापा!'

